ResearchNext International Multidisciplinary Journal

Vol- 2, Issue- 3, July-September 2026 **ISSN (O)- 3107-9725**

Email id: editor@researchnextjournal.com **Website-** www.researchnextjournal.com

उत्तरकाशी जनपद में शैव धर्म का कला एवं सांस्कृतिक परिदृश्य पर प्रभाव

प्रदीप बड़थ्वाल

शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, गुरुकुल कांगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रो. प्रभात कुमार

प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, गुरुकुल कांगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार

Article Info: *(Recieved- 08/03/2026, Accept- 18/06/2026, Published- 05/07/2026)*

DOI- 10.64127/rnimj.2026v2i3004

सारांश–

उत्तराखण्ड का उत्तरकाशी जनपद प्राचीन काल से ही भारतीय आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं का एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। मध्य हिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं के मध्य अवस्थित यह क्षेत्र अपनी प्राकृतिक सुषमा के साथ–साथ समृद्ध धार्मिक, सांस्कृतिक एवं कलात्मक विरासत के कारण विशिष्ट पहचान रखता है। प्राचीन साहित्य, पुराणों, स्थानीय परम्पराओं तथा उपलब्ध पुरातात्विक साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि उत्तरकाशी प्राचीन काल से ही शैव धर्म का एक प्रमुख साधना–केन्द्र रहा है। यहाँ स्थित विश्वनाथ मंदिर, गंगोत्री मार्ग के प्राचीन शिवालय, ग्राम–देवता परम्परा, शैव मठों तथा विविध धार्मिक स्थलों से सम्बद्ध परम्पराएँ इस क्षेत्र में शैव उपासना की प्राचीनता एवं निरन्तरता का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। शैव धर्म ने उत्तरकाशी की मंदिर स्थापत्य कला, मूर्तिकला, लोककला, काष्ठ एवं धातु शिल्प, धार्मिक अनुष्ठानों, लोकसंगीत, लोकनृत्य, जागर परम्परा तथा सांस्कृतिक जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। इसके अतिरिक्त, पर्वत, नदी, वन एवं प्राकृतिक तत्वों के प्रति श्रद्धा पर आधारित शैव दर्शन ने स्थानीय समाज में प्रकृति संरक्षण एवं सांस्कृतिक सह–अस्तित्व की भावना को भी सुदृढ़ किया। उत्तरकाशी के धार्मिक केन्द्र केवल आस्था के प्रतीक नहीं रहे, बल्कि उन्होंने सामाजिक संगठन, सांस्कृतिक निरन्तरता तथा स्थानीय कला–परम्पराओं के संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रस्तुत शोध–पत्र में उत्तरकाशी जनपद में शैव धर्म के ऐतिहासिक विकास, मंदिर स्थापत्य, लोक–सांस्कृतिक परिदृश्य पर उसके प्रभाव का ऐतिहासिक, कला–ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से विश्लेषण किया गया है। साथ ही, क्षेत्र की शैव सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण एवं उसके समुचित प्रलेखन की आवश्यकता पर भी विचार किया गया है।

मुख्य शब्द– उत्तरकाशी, शैव धर्म, कला, मंदिर, सांस्कृतिक विरासत, हिमालय।

किसी भी क्षेत्र की स्थापत्य कला का अध्ययन उसके ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा सांस्कृतिक परिवेश के संदर्भ में ही पूर्णता प्राप्त करता है। स्थापत्य कला केवल भवन निर्माण की तकनीक नहीं है, अपितु वह किसी समाज की सांस्कृतिक चेतना, धार्मिक मान्यताओं, सामाजिक संरचना, आर्थिक स्थिति तथा कलात्मक अभिरुचियों की मूर्त अभिव्यक्ति होती है। किसी क्षेत्र में निर्मित मंदिर, मठ, आश्रम, स्मारक, आवासीय भवन तथा अन्य स्थापत्य संरचनाएँ उस क्षेत्र की सांस्कृतिक परंपराओं तथा ऐतिहासिक विकास की साक्षी होती हैं। इस दृष्टि से उत्तरकाशी जनपद की स्थापत्य कला का अध्ययन उसकी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में अत्यंत महत्त्वपूर्ण

हो जाता है।

भारत विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है, जिसकी सांस्कृतिक परंपरा हजारों वर्षों से निरंतर विकसित होती रही है। भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता इसकी आध्यात्मिकता, सहिष्णुता तथा विविधता में निहित एकता है। भारतीय सभ्यता के विकास में हिमालय का विशेष योगदान रहा है। हिमालय केवल एक भौगोलिक इकाई नहीं, बल्कि भारतीय जनमानस की धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक भी है। वैदिक साहित्य, महाकाव्यों तथा पुराणों में हिमालय को देवताओं का निवास स्थान, ऋषियों की तपोभूमि तथा मोक्षदायिनी नदियों का उद्‌गम क्षेत्र बताया गया है ।

हिमालय की गोद में स्थित उत्तराखण्ड राज्य प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति, धर्म एवं दर्शन का प्रमुख केंद्र रहा है। यहाँ स्थित असंख्य मंदिर, आश्रम तथा तीर्थस्थल भारतीय धार्मिक परंपराओं के जीवंत प्रतीक हैं। इसी धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व के कारण उत्तराखण्ड को 'देवभूमि' कहा जाता है। यहाँ विकसित स्थापत्य कला स्थानीय भूगोल, धार्मिक आस्था तथा लोक परंपराओं के समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है ।

उत्तरकाशी जनपद उत्तराखण्ड राज्य के गढ़वाल मंडल का एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र है। यह जनपद भागीरथी नदी के तट पर स्थित है तथा उत्तर में तिब्बत, पश्चिम में हिमाचल प्रदेश, पूर्व में चमोली तथा दक्षिण में टिहरी गढ़वाल से घिरा हुआ है। अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण यह क्षेत्र प्राचीन काल से ही धार्मिक यात्राओं, सांस्कृतिक आदान–प्रदान तथा आध्यात्मिक साधना का केंद्र रहा है। गंगोत्री एवं यमुनोत्री जैसे प्रमुख तीर्थस्थलों की उपस्थिति ने इसकी धार्मिक प्रतिष्ठा को और अधिक सुदृढ़ किया है ।

उत्तरकाशी का नाम भी इसकी धार्मिक महत्ता का परिचायक है। 'उत्तरकाशी' का शाब्दिक अर्थ है– 'उत्तर दिशा में स्थित काशी'। जिस प्रकार वाराणसी भगवान शिव की नगरी के रूप में प्रसिद्ध है, उसी प्रकार उत्तरकाशी भी शिवोपासना का प्रमुख केंद्र माना जाता है। यहाँ स्थित प्राचीन विश्वनाथ मंदिर इस परंपरा का प्रमुख प्रतीक है। स्थानीय परंपराओं तथा धार्मिक मान्यताओं के अनुसार उत्तरकाशी को प्राचीन काल से ऋषियों, तपस्वियों तथा साधकों की तपोभूमि माना जाता रहा है ।

भारतीय संस्कृति में शैव धर्म का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। वैदिक रुद्र से विकसित होकर शिव भारतीय धार्मिक चेतना के सर्वाधिक लोकप्रिय देवता बने। उत्तराखण्ड को प्राचीन ग्रन्थों में देवभूमि कहा गया है, जहाँ शिव की उपासना अत्यन्त प्राचीन परम्परा के रूप में विद्यमान रही है। विशेषतः उत्तरकाशी जनपद, जो भागीरथी घाटी में अवस्थित है, शिवभक्ति का एक प्रमुख केन्द्र माना जाता है। यहाँ स्थित प्राचीन शिव मंदिर, तीर्थस्थल, लोकपरम्पराएँ तथा धार्मिक उत्सव इस बात के साक्ष्य हैं कि शैव धर्म ने केवल धार्मिक जीवन को ही नहीं, बल्कि कला, स्थापत्य, मूर्तिकला और लोकसंस्कृति को भी गहराई से प्रभावित किया।

उत्तराखण्ड प्राचीन काल से ही शैव धर्म का एक प्रमुख केन्द्र रहा है। भारतीय धार्मिक साहित्य, पुराणों तथा महाकाव्यों में इस क्षेत्र को शिव की तपोभूमि एवं दिव्य निवास के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। हिमालय की दुर्गम पर्वतमालाएँ, पवित्र नदियाँ तथा एकांत साधना–स्थल प्राचीन काल से ही ऋषियों, तपस्वियों एवं शैव साधकों को आकर्षित करते रहे, जिसके परिणामस्वरूप यहाँ शैव परम्परा का क्रमिक विकास हुआ। महाभारत में वर्णित प्रसंगों से ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण ने उपमन्यु ऋषि से शैव दीक्षा ग्रहण कर शिवोपासना की, जबकि अर्जुन ने हिमालय क्षेत्र में कठोर तपस्या के उपरान्त किरात रूपधारी शिव के दर्शन प्राप्त कर पाशुपतास्त्र का वरदान प्राप्त किया। इन आख्यानों से स्पष्ट होता है कि हिमालय क्षेत्र तत्कालीन भारतीय धार्मिक जीवन में शैव साधना के प्रमुख केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित था।

पुराण साहित्य भी उत्तराखण्ड को शिव के परम पवित्र क्षेत्र के रूप में निरूपित करता है। शिव महापुराण में केदार क्षेत्र को भगवान शिव का अधिष्ठान माना गया है तथा इसे मोक्षदायक तीर्थ के रूप में विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है। कोटिरुद्रसंहिता, विद्येश्वर संहिता, हरिवंशपुराण, वामनपुराण तथा वाराहपुराण जैसे ग्रन्थों में केदारखण्ड एवं बदरिकाश्रम की धार्मिक महत्ता का उल्लेख मिलता है, जहाँ शिव आराधना को आध्यात्मिक सिद्धि और मोक्ष का प्रमुख साधन माना गया है। इन ग्रन्थों में वर्णित धार्मिक परम्पराएँ यह प्रमाणित करती हैं कि यह भू–भाग केवल वैष्णव उपासना का ही केन्द्र नहीं था, बल्कि शैव साधना का भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्षेत्र था।

समय के साथ उत्तराखण्ड की शैव परम्परा ने केवल धार्मिक जीवन को ही नहीं, बल्कि कला, स्थापत्य, मूर्तिकला तथा लोकसंस्कृति को भी गहराई से प्रभावित किया। यहाँ निर्मित प्राचीन शिव मंदिरों, शिवलिंगों, नन्दी

प्रतिमाओं तथा शैव प्रतीकों में स्थानीय शिल्प परम्परा और धार्मिक आस्था का अद्वितीय समन्वय दिखाई देता है। हिमालय की भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप विकसित मंदिर स्थापत्य ने इस क्षेत्र की विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान निर्मित की। साथ ही, लोकजीवन में प्रचलित मेलों, पर्वों, जागर परम्परा, लोककथाओं तथा धार्मिक अनुष्ठानों में भी शिव के विविध स्वरूपों की व्यापक उपस्थिति इस बात का संकेत देती है कि शैव धर्म ने उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक संरचना को गहन रूप से प्रभावित किया।

उत्तरकाशी में विद्यमान शिव मंदिरों को उनके नाम एवं धार्मिक स्वरूप के आधार पर दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में ईश्वरान्तक परम्परा से सम्बद्ध गोपेश्वर, तिलकेश्वर, विश्वेश्वर, लक्षेश्वर तथा कमलेश्वर जैसे मंदिर सम्मिलित हैं, जबकि द्वितीय वर्ग में नाथांतक परम्परा से सम्बन्धित विश्वनाथ मंदिर प्रमुख है। इन मंदिरों के नामकरण एवं धार्मिक स्वरूप से यह स्पष्ट होता है कि उत्तरकाशी में शैव धर्म की विभिन्न शाखाओं एवं उपासना परम्पराओं का समान रूप से विकास हुआ।

धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से उत्तरकाशी को प्रायः हिमालय की वाराणसी अथवा उत्तर की काशी कहा जाता है। यह उपमा केवल धार्मिक मान्यता का परिणाम नहीं है, बल्कि यहाँ स्थित असंख्य शिवालयों, तीर्थों तथा अखण्ड धार्मिक परम्परा का द्योतक भी है। यद्यपि वाराणसी और उत्तरकाशी की भौगोलिक एवं नगरीय संरचना में पर्याप्त भिन्नता है, तथापि दोनों नगरों की मूल पहचान शिवोपासना एवं आध्यात्मिक चेतना से निर्मित हुई है। जहाँ वाराणसी गंगा तट पर विकसित एक प्राचीन महानगर है, वहीं उत्तरकाशी हिमालय की प्राकृतिक गोद में अवस्थित अपेक्षाकृत छोटा किन्तु अत्यन्त पवित्र धार्मिक नगर है, जिसकी सांस्कृतिक पहचान उसके मंदिरों, आश्रमों, साधु–संतों तथा भागीरथी के पावन तट से निर्मित होती है।

उत्तरकाशी जनपद मध्य हिमालय की उस सांस्कृतिक परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है, जहाँ शैव धर्म ने धार्मिक जीवन के साथ–साथ मंदिर स्थापत्य के विकास को भी गहराई से प्रभावित किया। भागीरथी घाटी में स्थित इस क्षेत्र में प्राचीन काल से शिवोपासना के प्रमुख केन्द्र विकसित हुए, जिनके परिणामस्वरूप मंदिर निर्माण की एक विशिष्ट पर्वतीय स्थापत्य परम्परा का विकास हुआ। उत्तरकाशी के मंदिरों में उत्तर भारतीय नागर शैली के मूल तत्त्वों का समावेश तो दिखाई देता है, किन्तु उनकी संरचना पूर्णतः स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों, निर्माण सामग्री तथा पारम्परिक शिल्प–ज्ञान के अनुरूप विकसित हुई है। इस कारण उत्तरकाशी के शैव मंदिर भारतीय मंदिर स्थापत्य की सामान्य परम्परा से भिन्न एक स्वतंत्र हिमालयी स्थापत्य पहचान प्रस्तुत करते हैं।

मध्य हिमालय की भौगोलिक परिस्थितियों ने उत्तरकाशी के मंदिर स्थापत्य को विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया। ऊँची पर्वत श्रेणियाँ, तीव्र ढाल, अत्यधिक वर्षा, हिमपात तथा भूकम्पीय सक्रियता को ध्यान में रखते हुए मंदिरों का निर्माण स्थानीय ग्रेनाइट, क्वार्टजाइट तथा शिस्ट जैसे पत्थरों से किया गया। अनेक मंदिरों में पत्थर के साथ लकड़ी का सीमित किन्तु महत्त्वपूर्ण उपयोग भी मिलता है, जिससे संरचना को लचीलापन एवं स्थायित्व प्राप्त होता था। मोटी दीवारें, अपेक्षाकृत छोटे प्रवेशद्वार, ऊँचा चबूतरा तथा सुदृढ़ आधारशिला इस स्थापत्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। यह स्पष्ट करता है कि उत्तरकाशी का मंदिर स्थापत्य केवल धार्मिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि पर्यावरणीय अनुकूलन एवं स्थानीय अभियान्त्रिक ज्ञान का भी उत्कृष्ट उदाहरण है।

उत्तरकाशी के अधिकांश शैव मंदिरों की स्थापत्य योजना भारतीय नागर परम्परा के अनुरूप वर्गाकार गर्भगृह, संकीर्ण अन्तराल तथा ऊर्ध्वमुखी शिखर पर आधारित है। शिखर अपेक्षाकृत सरल किन्तु संतुलित अनुपात वाला होता है, जबकि बाह्य भित्तियों पर अलंकरण सीमित रखा गया है। द्वारशाखाओं, ललाटबिम्बों तथा भित्तियों पर शिव, नन्दी, गणेश, कीर्तिमुख, पद्म, गंगा–यमुना एवं पुष्पवल्लरी जैसे धार्मिक प्रतीकों का अंकन मिलता है। यह अलंकरण केवल सजावटी उद्देश्य से नहीं, बल्कि शैव दर्शन के प्रतीकात्मक पक्ष को अभिव्यक्त करता है। पर्वतीय मंदिरों में मूर्तिकला एवं स्थापत्य का यह समन्वय भारतीय कला की एक विशिष्ट क्षेत्रीय परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है।

उत्तरकाशी नगर का विश्वनाथ मंदिर इस स्थापत्य परम्परा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। यह मंदिर न केवल जनपद का प्रमुख शैव तीर्थ है, बल्कि सम्पूर्ण मध्य हिमालय की धार्मिक परम्परा का प्रतिनिधि स्मारक भी है। वर्तमान मंदिर का स्थापत्य विभिन्न ऐतिहासिक कालों में हुए पुनर्निर्माण एवं जीर्णोद्धार का परिणाम है, तथापि इसकी मूल धार्मिक परम्परा अत्यन्त प्राचीन मानी जाती है। मंदिर परिसर में स्थित विशाल त्रिशूल, शिवलिंग तथा अन्य शैव प्रतीक इसकी प्राचीनता एवं धार्मिक निरन्तरता के सशक्त प्रमाण हैं। स्थानीय परम्पराएँ तथा ऐतिहासिक विवरण उत्तरकाशी को श्उत्तर की काशीश के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं, जहाँ विश्वनाथ मंदिर

धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन का केन्द्र रहा है।

विश्वनाथ मंदिर के अतिरिक्त उत्तरकाशी जनपद के अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित प्राचीन शिवालय भी पर्वतीय स्थापत्य परम्परा के महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं। पुरातात्विक सर्वेक्षणों से ज्ञात होता है कि जनपद के विभिन्न भागों में मध्यकालीन मंदिरों, शिलाखण्डों एवं शिव प्रतिमाओं के अवशेष प्राप्त हुए हैं, जो इस क्षेत्र में शैव धर्म के व्यापक प्रसार के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इन मंदिरों का निर्माण स्थानीय शिल्पियों द्वारा उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों एवं पारम्परिक निर्माण तकनीकों के आधार पर किया गया था। परिणामस्वरूप इनकी संरचना में स्थानीयता, उपयोगिता तथा धार्मिक प्रतीकवाद का संतुलित समन्वय दिखाई देता है।

उत्तरकाशी जनपद के ग्रामदेवता मंदिरों की स्थापत्य संरचना अपेक्षाकृत सरल होती है, किन्तु उनकी धार्मिक महत्ता अत्यन्त अधिक होती है। सामान्यतः इन मंदिरों में एक गर्भगृह होता है, जिसमें ग्रामदेवता की प्रतिमा अथवा मुखौटा स्थापित किया जाता है। ये प्रतिमाएँ अथवा मुखौटे प्रायः अष्टधातु से निर्मित होते हैं। कुछ स्थानों पर स्वर्ण अथवा रजत निर्मित मुखौटे भी प्राप्त होते हैं। अधिकांश मुखौटे केवल मुख अथवा मुख से धड़ तक के भाग का प्रतिनिधित्व करते हैं और इन्हें अत्यन्त श्रद्धा के साथ सुरक्षित रखा जाता है।

उत्तरकाशी के लोकदेवता मंदिरों की एक विशिष्ट विशेषता देवडोली परम्परा है। ग्रामदेवता के मुख्य मंदिर के साथ प्रायः उस देवता की एक मुख्य डोली भी होती है। यह डोली सामान्यतः लकड़ी से निर्मित होती है और मंदिर परिसर में ही सुरक्षित रखी जाती है। मेलों, उत्सवों अथवा विशेष धार्मिक अवसरों पर मंदिर के पुजारी द्वारा गर्भगृह से देवता का मुखौटा अथवा प्रतीकात्मक प्रतिमा निकालकर डोली में स्थापित की जाती है। इसके पश्चात डोली को वस्त्रों, आभूषणों तथा अन्य सजावटी सामग्री से अलंकृत किया जाता है।

लोकमान्यता के अनुसार जब देवता का मुखौटा डोली में स्थापित कर दिया जाता है, तब वह डोली देवता की सजीव उपस्थिति का प्रतीक बन जाती है। धार्मिक अनुष्ठानों के दौरान डोली विशेष प्रकार की सांकेतिक गतिविधियों के माध्यम से देवता की इच्छा अथवा आदेश व्यक्त करती है। स्थानीय समाज में कुछ अनुभवी व्यक्ति ऐसे होते हैं जो इन सांकेतिक संकेतों की व्याख्या करने में दक्ष माने जाते हैं और उनके माध्यम से समुदाय देवता के संदेश को समझता है।

उत्तरकाशी के शैव मंदिरों की एक अन्य विशिष्ट विशेषता उनका प्राकृतिक परिवेश से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अधिकांश मंदिर भागीरथी नदी, उसकी सहायक धाराओं अथवा पर्वतीय ढालों के समीप स्थापित किए गए हैं। भारतीय शैव दर्शन में पर्वत, नदी, वन तथा प्राकृतिक शक्तियों को शिव के दिव्य स्वरूप का अभिन्न अंग माना गया है। यही कारण है कि मंदिरों का स्थान–चयन भी धार्मिक प्रतीकवाद एवं प्राकृतिक पवित्रता के आधार पर किया गया। इस प्रकार उत्तरकाशी का मंदिर स्थापत्य केवल वास्तुकला का उदाहरण नहीं, बल्कि धार्मिक आस्था, सांस्कृतिक भू–दृश्य तथा प्राकृतिक पर्यावरण के मध्य स्थापित गहरे सम्बन्ध का भी सजीव प्रमाण है।

समग्रतः उत्तरकाशी जनपद का शैव मंदिर स्थापत्य भारतीय नागर शैली, मध्य हिमालय की क्षेत्रीय वास्तु परम्परा तथा स्थानीय शिल्पकला के सृजनात्मक समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण है। यहाँ के मंदिर केवल धार्मिक आस्था के केन्द्र नहीं हैं, बल्कि वे उत्तराखण्ड की ऐतिहासिक चेतना, कलात्मक विकास, स्थापत्य परम्परा तथा सांस्कृतिक निरन्तरता के महत्त्वपूर्ण साक्ष्य भी हैं। अतः इन मंदिरों का संरक्षण, वैज्ञानिक प्रलेखन तथा कला–ऐतिहासिक अध्ययन न केवल उत्तरकाशी बल्कि सम्पूर्ण मध्य हिमालय की सांस्कृतिक विरासत के समुचित मूल्यांकन के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

लोककला एवं सांस्कृतिक जीवन पर शैव धर्म का प्रभाव

उत्तरकाशी जनपद में शैव धर्म का प्रभाव केवल मंदिरों, मूर्तिकला एवं स्थापत्य तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि इसने क्षेत्र की लोककला, लोकसाहित्य, धार्मिक अनुष्ठानों तथा सांस्कृतिक जीवन को भी गहराई से प्रभावित किया। हिमालयी समाज में धर्म और लोकजीवन के मध्य घनिष्ठ संबंध रहा है, जिसके परिणामस्वरूप शिव से संबंधित धार्मिक अवधारणाएँ लोकविश्वास, लोकाचार, पर्व–त्योहार, संगीत, नृत्य तथा लोकनाट्य का अभिन्न अंग बन गईं। उत्तरकाशी की सांस्कृतिक संरचना का विकास स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों, ग्राम–देवता परम्परा तथा शैव आध्यात्मिक चेतना के समन्वय से हुआ है, जहाँ भगवान शिव केवल एक आराध्य देव नहीं, बल्कि लोकजीवन के संरक्षक, योगी, तपस्वी तथा प्रकृति के अधिष्ठाता देव के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

उत्तरकाशी के लोकगीतों में शिव एवं पार्वती से संबंधित प्रसंग अत्यधिक लोकप्रिय हैं। विवाह, यज्ञोपवीत, कृ

षि कार्य, ऋतु–परिवर्तन तथा धार्मिक उत्सवों के अवसर पर गाए जाने वाले अनेक लोकगीतों में कैलाश, केदारखण्ड, भागीरथी तथा शिव–पार्वती के दाम्पत्य जीवन का भावपूर्ण चित्रण मिलता है। इन गीतों में शिव को लोकजीवन के निकट एक ऐसे देवता के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो पर्वतीय समाज की कठिनाइयों, श्रम–संस्कृति तथा प्राकृतिक परिवेश से गहरे रूप में जुड़े हुए हैं। इस प्रकार शैव परम्परा ने उत्तरकाशी के लोकसाहित्य को धार्मिकता के साथ–साथ सांस्कृतिक संवेदनशीलता भी प्रदान की है।

उत्तरकाशी की जागर परम्परा शैव संस्कृति के प्रभाव का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। जागर उत्तराखण्ड की प्राचीन लोक–धार्मिक परम्परा है, जिसमें देवताओं, लोकनायकों एवं पूर्वजों का आवाहन लोकगायन, वाद्ययंत्रों तथा विशेष धार्मिक अनुष्ठानों के माध्यम से किया जाता है। अनेक जागरों में भगवान शिव, भैरव, नागराज तथा अन्य शैव देवताओं का स्मरण प्रमुखता से किया जाता है। डमरू, हुड़का तथा थाली जैसे पारम्परिक वाद्ययंत्रों के साथ सम्पन्न होने वाली यह परम्परा शैव तांत्रिक एवं लोकधार्मिक परम्पराओं के समन्वय का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करती है। जागर केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि उत्तराखण्ड की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत का भी महत्त्वपूर्ण अंग है।

उत्तरकाशी के सांस्कृतिक जीवन में महाशिवरात्रि, श्रावण मास, सोमवती अमावस्या तथा विभिन्न स्थानीय मेलों का विशेष महत्व है। विश्वनाथ मंदिर तथा जनपद के अन्य शिवालयों में इन अवसरों पर आयोजित धार्मिक अनुष्ठान केवल पूजा–पद्धति तक सीमित नहीं रहते, बल्कि इनके माध्यम से लोकनृत्य, भजन, कीर्तन, पारम्परिक संगीत तथा सामुदायिक सहभागिता को भी प्रोत्साहन मिलता है। इन आयोजनों ने सामाजिक एकता, सांस्कृतिक निरन्तरता तथा धार्मिक सह–अस्तित्व की भावना को सुदृढ़ किया है। विशेष रूप से महाशिवरात्रि का उत्सव उत्तरकाशी के धार्मिक जीवन का प्रमुख सांस्कृतिक आयोजन है, जिसमें स्थानीय समाज के साथ दूर–दराज़ से आने वाले श्रद्धालु भी सम्मिलित होते हैं।

उत्तरकाशी की लोककला में भी शैव प्रतीकों का व्यापक उपयोग दिखाई देता है। मंदिरों के काष्ठद्वारों, गृह–स्थापत्य, धातु–शिल्प, घंटियों, त्रिशूलों, दीपस्तम्भों तथा धार्मिक उपकरणों पर त्रिशूल, डमरू, नाग, नन्दी, अर्धचन्द्र, कमल तथा कीर्तिमुख जैसे शैव प्रतीकों का अंकन मिलता है। स्थानीय काष्ठकला एवं धातुकला में विकसित यह अलंकरण केवल सौन्दर्यबोध का परिचायक नहीं है, बल्कि धार्मिक आस्था एवं सांस्कृतिक पहचान का भी प्रतीक है। इससे स्पष्ट होता है कि शैव धर्म ने उत्तरकाशी की लोककलाओं को विषयवस्तु, प्रतीक एवं कलात्मक अभिव्यक्ति तीनों स्तरों पर प्रभावित किया।

शैव धर्म ने उत्तरकाशी के लोकविश्वासों एवं पर्यावरणीय संस्कृति को भी गहराई से प्रभावित किया। यहाँ पर्वतों, नदियों, वनों, जलस्रोतों तथा विशिष्ट वृक्षों को शिव का स्वरूप अथवा उनका निवास माना जाता है। अनेक पवित्र उपवन, जलधाराएँ तथा पर्वतीय शिखर धार्मिक दृष्टि से संरक्षित रहे हैं, जिसके कारण स्थानीय समाज में प्रकृति संरक्षण की परम्परा विकसित हुई। यह परम्परा शैव दर्शन की उस अवधारणा को प्रतिबिम्बित करती है, जिसमें सम्पूर्ण प्रकृति को दिव्य सत्ता का विस्तार माना गया है। इस प्रकार उत्तरकाशी का सांस्कृतिक जीवन धार्मिक आस्था एवं पारिस्थितिक चेतना के अद्वितीय समन्वय का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

समग्रतः उत्तरकाशी जनपद की लोककला एवं सांस्कृतिक परम्पराएँ शैव धर्म की गहन एवं दीर्घकालिक छाप को अभिव्यक्त करती हैं। लोकगीतों, जागर, धार्मिक उत्सवों, लोकविश्वासों, शिल्पकलाओं तथा प्रकृति–पूजा की परम्पराओं में शैव दर्शन के विविध आयाम आज भी जीवित हैं। यही कारण है कि उत्तरकाशी की सांस्कृतिक विरासत का अध्ययन शैव परम्परा के समुचित विश्लेषण के बिना पूर्ण नहीं माना जा सकता। यह परम्परा न केवल क्षेत्र की ऐतिहासिक निरन्तरता का प्रतीक है, बल्कि हिमालयी समाज की सांस्कृतिक अस्मिता एवं लोकचेतना की भी आधारशिला है।

सांस्कृतिक विरासत संरक्षण की आवश्यकता

उत्तरकाशी की शैव सांस्कृतिक विरासत आज अनेक चुनौतियों का सामना कर रही है। प्राकृतिक आपदाएँ, भूकम्प, बाढ़, अनियोजित निर्माण, पर्यटन का बढ़ता दबाव तथा पारम्परिक शिल्पकला का ह्रास अनेक स्मारकों एवं कलात्मक धरोहरों के लिए संकट उत्पन्न कर रहे हैं। आवश्यकता है कि मंदिरों, मूर्तियों, अभिलेखों तथा लोकपरम्पराओं का वैज्ञानिक प्रलेखन किया जाए तथा स्थानीय समुदाय की सहभागिता से इनके संरक्षण की योजनाएँ विकसित की जाएँ। डिजिटल अभिलेखीकरण, सांस्कृतिक पर्यटन का संतुलित विकास तथा पारम्परिक

शिल्पियों को प्रोत्साहन इस दिशा में प्रभावी कदम सिद्ध हो सकते हैं।

उत्तरकाशी जनपद में शैव धर्म ने केवल धार्मिक परम्परा को ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण कला एवं सांस्कृतिक परिदृश्य को गहराई से प्रभावित किया है। मंदिर स्थापत्य, मूर्तिकला, लोककला, धार्मिक अनुष्ठान, लोकविश्वास तथा सांस्कृतिक परम्पराएँ सभी शैव दर्शन की व्यापक उपस्थिति को प्रतिबिम्बित करती हैं। हिमालयी परिस्थितियों के अनुरूप विकसित कला–शैली भारतीय सांस्कृतिक विविधता का एक विशिष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। वर्तमान समय में इस अमूल्य सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण एवं वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता पहले से अधिक है, जिससे भावी पीढ़ियाँ इस समृद्ध शैव परम्परा को समझ सकें और इसका संरक्षण सुनिश्चित किया जा सके।

Author's Declaration:

I/We, the author(s)/co-author(s), declare that the entire content, views, analysis, and conclusions of this article are solely my/our own. I/We take full responsibility, individually and collectively, for any errors, omissions, ethical misconduct, copyright violations, plagiarism, defamation, misrepresentation, or any legal consequences arising now or in the future. The publisher, editors, and reviewers shall not be held responsible or liable in any way for any legal, ethical, financial, or reputational claims related to this article. All responsibility rests solely with the author(s)/co-author(s), jointly and severally. I/We further affirm that there is no conflict of interest financial, personal, academic, or professional regarding the subject, findings, or publication of this article.

संदर्भ–

1. कालिदास, कुमारसंभवम्, प्रथम सर्ग
2. महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय 10
3. शिव महापुराण, कोटिरुद्र संहिता, अध्याय 19
4. शिव महापुराण, विद्येश्वर संहिता, अध्याय 12, श्लोक 20
5. हरिवंश पुराण, पर्व 3, अध्याय 73, श्लोक 3
6. वामन पुराण, अध्याय 65 एवं 101
7. वाराह पुराण, अध्याय 97 एवं 122
8. नचिकेत चंचानी, माउंटेन टेम्पल्स एंड टेम्पल माउंटेन्स रू सेंट्रल हिमालय में स्थापत्य, धर्म और प्रकृति, यूनिवर्सिटी ऑफ वाशिंगटन प्रेस, सिएटल, 2019, पृ. 31–67
9. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, इंडियन आर्कियोलॉजी 1998–99, ए रिव्यू, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली, 2003, पृ. 213–214
10. गोविन्द चातक, गढ़वाली लोकगीत, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1988
11. Uttarakhand Tourism Development Board, Char Dham and Cultural Tourism in Uttarakhand, Dehradun, 2022 (District Gazetteer, Uttarkashi, Government of Uttar Pradesh, Lucknow, Revised Edition.

Cite this Article

"प्रदीप बड़थ्वाल, प्रो. प्रभात कुमार", "उत्तरकाशी जनपद में शैव धर्म का कला एवं सांस्कृतिक परिदृश्य पर प्रभाव", ResearchNext International Multidisciplinary Journal (RPIMJ), ISSN: 3107-9725 (Online), Volume:2, Issue:3, July-September 2026.

"Copyright © 2026 The Author(s). This work is licensed under Creative Commons Attribution 4.0 (CC-BY), allowing others to use, share, modify, and distribute it with proper credit to the author."